

अहमदाबाद महिला एक्शन समूह और अन्य

बनाम

भारत संघ

24 फरवरी, 1997

[ए.एम. अहमदी, सी. जे. सुजाता, वी. मनोहर और के. वेंकटस्वामी, जे. जे.]

भारत का संविधान-अनुच्छेद 13, 14, 15 और 32--का दायरा- न्यायालय की शक्ति-व्यक्तिगत कानूनों से संबंधित विधायी नीति-न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप- विस्तार-व्यक्तिगत कानून ।

जनहित याचिका के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत विभिन्न संगठनों द्वारा तीन रिट याचिकाएं दायर की गई थीं। अहमदाबाद महिला एक्शन ग्रुप ने अपनी रिट याचिका में निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की:-

(ए) बहुविवाह की अनुमति देने वाले मुस्लिम पर्सनल लॉ को संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने के कारण शून्य घोषित करने के लिये।

(बी) मुस्लिम पर्सनल लॉ जो एक मुस्लिम पुरुष को सक्षम बनाता है कि अपनी पत्नी को उसकी सहमति के बिना और अदालतों की न्यायिक प्रक्रिया का सहारा लिए बिना एकतरफा तलाक देने को संविधान के अनुच्छेद 13, 14 और 15 का उल्लंघन करने के कारण शून्य घोषित करना।

(सी) यह घोषित करने के लिए कि केवल यह तथ्य कि एक मुस्लिम पति एक से अधिक पत्नियाँ रखता है, मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 की धारा 2 के खंड VIII (एफ) के अर्थ में क्रूरता का कार्य है।

(डी) यह घोषित करने के लिए कि मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने वाला होने के कारण शून्य है ।

(ई) आगे यह घोषित करने के लिए कि सुन्नी और शिया विरासत कानून के प्रावधान जो समान स्थिति के पुरुषों की हिस्सेदारी की तुलना में महिलाओं के हिस्से के साथ भेदभाव करते हैं, केवल लिंग के आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के रूप में शून्य हैं।

लोक सेवक संघ द्वारा दायर रिट याचिका में निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना की गई थी:

(ए) भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 सपठित अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने वाले हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 2(2), 5(ii) और (iii), 6 और धारा 30 के स्पष्टीकरण को शून्य घोषित करने के लिए;

(बी) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा (2) को शून्य घोषित करना क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के विरुद्ध है;

(सी) संरक्षक और वार्ड अधिनियम की धारा 6 के सपठित हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम की धारा 3(2), 6 और 9 को शून्य घोषित करने के लिए:

(डी) एक हिंदू पति या पत्नी को अपने पति या पत्नी और आश्रित के निश्चित हिस्से का प्रावधान किए बिना वसीयतनामा बनाने के लिए दी गई निरंकुश और पूर्ण विवेकाधिकार को शून्य घोषित करना । इसी तरह अपनी रिट याचिका में, यंग वूमैन क्रिश्चियन एसोसिएशन ने यह घोषणा करने की मांग की कि भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 10 और 34 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 43 से 48 शून्य हैं।

इस न्यायालय ने रिट याचिकाओं को खारिज करते हुये अभिनिर्धारित किया

1.1. विधानमंडल राज्य के कल्याण के लिए जिम्मेदार है और यह उनका काम है कि वे उस नीति को निर्धारित करें जिसका राज्य को अनुसरण करना चाहिए। इसलिए, यह उन्हें निर्धारित करना है कि राज्य के कल्याण को आगे बढ़ाने के लिए कानून की किताब में कौन सा कानून रखा जाए। न्यायालयों को उनके विचारों के स्वामित्व या उनकी बुद्धिमत्ता से कोई सरोकार नहीं है। [395-एफ]

1.2. न्यायालय अधिक से अधिक सलाह दे सकते हैं और राज्य नीति पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं कि राज्य उस समस्या पर नीति बनाएं और उसे नींद से झकझोरें, उसे जगाने, आगे बढ़ने और लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रेरित करें। क्योंकि, न्यायालय की चिंता चाहे जो भी हो, उसे अनिवार्य रूप से, कहीं न कहीं और कभी-कभी, अपनी आत्म-गति को तोड़ने की आवश्यकता होती है, जिसे न्यायिक भाषा में आत्म-संयम के रूप में वर्णित किया जाता है।

महर्षि अवधेष व्. यूनियन ऑफ़ इंडिया, [1994] supp. 1 एससीसी 715; रेनॉल्ड राजमणि & अन्य. बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया & अन्य, [1982] 2 एससीसी 474; पन्नालाल बंसीलाल एवं अन्य बनाम एपी राज्य एवं अन्य, [1996] 2 एससीसी 498 और मधु किश्वर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, [1996] 5 एससीसी 125, पर निर्भर।

2. भारत का संविधान व्यक्तिगत कानूनों के अस्तित्व को उस संदर्भ में मान्यता देता है जब यह समवर्ती सूची-सूची III में आइटम 5 में व्यक्तिगत कानून के अंतर्गत आने वाले विषय से संबंधित है। फिर भी संविधान के निर्माता नहीं चाहते थे कि व्यक्तिगत कानूनों के प्रावधानों को संविधान के भाग III में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के कारण चुनौती दी जाये और इसलिए उनका इन व्यक्तिगत कानूनों को

"प्रवृत्त कानूनों" की परिभाषा में शामिल करने का इरादा नहीं था। इसलिए, व्यक्तिगत कानून अनुच्छेद 13(एफ) के अंतर्गत नहीं आते हैं। [399-डी-जी]

बॉम्बे राज्य बनाम नरसु अप्पा माली, ए.आई.आर.(1952) बॉम्बे। 84, उद्धृत।

कृष्णा सिंह बनाम मथुरा अहीर एवं अन्य, एआईआर (1980) एससी 707, पर भरोसा किया गया।

सरला मुद्गल एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य। [1995] 3 एससीसी 635, विभेदित।

3. याचिकाकर्ता द्वारा भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 10 के प्रावधानों को भेदभावपूर्ण, होने से, संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होने के आधार पर दी गयी चुनौती में सार नहीं। [404-ई]

अनिल कुमार महसी बनाम भारत संघ एवं अन्य [1994] 5 एससीसी 704, पालन किया।

4. जहां तक मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 को चुनौती का सवाल है, उक्त मुद्दा इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष लंबित है। इसलिए, उस संबंध में कार्यवाही बढ़ाने का कोई कारण नहीं है। [404-एफ]

सिविल मूल क्षेत्राधिकार: रिट याचिका (सी) संख्या 494 /1996 आदि  
(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत)

टी.यू. मेहता और पी.पी.जुनेजा याचिकाकर्ताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश के, वेंकटस्वामी, द्वारा पारित किया गया:

1. ये सभी रिट याचिकाएँ जनहित याचिका के रूप में दायर की गई हैं । डब्ल्यूपी (सी) संख्या 494/96 में, जिन राहतों के लिए प्रार्थना की गई है वे इस प्रकार हैं:

(ए) बहुविवाह की अनुमति देने वाले मुस्लिम पर्सनल लॉ को संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने के कारण शून्य घोषित करने के लिये।

(बी) मुस्लिम पर्सनल लॉ जो एक मुस्लिम पुरुष को सक्षम बनाता है कि अपनी पत्नी को उसकी सहमति के बिना और अदालतों की न्यायिक प्रक्रिया का सहारा लिए बिना एकतरफा तलाक देने को संविधान के अनुच्छेद 13, 14 और 15 का उल्लंघन करने के कारण शून्य घोषित करना।

(सी) यह घोषित करने के लिए कि केवल यह तथ्य कि एक मुस्लिम पति एक से अधिक पत्नियाँ रखता है, मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 की धारा 2 के खंड VIII (एफ) के अर्थ में क्रूरता का कार्य है।

(डी) यह घोषित करने के लिए कि मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने वाला होने के कारण शून्य है ।

(ई) आगे यह घोषित करने के लिए कि सुन्नी और शिया विरासत कानून के प्रावधान जो समान स्थिति के पुरुषों की हिस्सेदारी की तुलना में महिलाओं के हिस्से के साथ भेदभाव करते हैं, केवल लिंग के आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के रूप में शून्य हैं।

2. रिट याचिका (सी) संख्या 496/96 में, जिन राहतों की प्रार्थना की गई है वे निम्नलिखित हैं:

(ए) भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 सपठित अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने वाले हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 2(2), 5(ii) और (iii), 6 और धारा 30 के स्पष्टीकरण को शून्य घोषित करने के लिए;

(बी) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा (2) को शून्य घोषित करना क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के विरुद्ध है;

(सी) संरक्षक और वार्ड अधिनियम की धारा 6 के सपठित हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम की धारा 3(2),6 और 9 को शून्य घोषित करने के लिए:

(डी) एक हिंदू पति या पत्नी को अपने पति या पत्नी और आश्रित के निश्चित हिस्से का प्रावधान किए बिना वसीयतनामा बनाने के लिए दी गई निरंकुश और पूर्ण विवेकाधिकार को शून्य घोषित करना ।

3. रिट याचिका (सी) संख्या 721/96 में, जिन राहतों की प्रार्थना की गई है वे निम्नलिखित हैं:

(ए) भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 10 और 34 को शून्य घोषित करना और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 43 से 48 को भी शून्य घोषित करना ।

सबसे पहले, हम यह कहना चाहेंगे कि ये रिट याचिकाएं गुण-दोष के आधार पर निपटान के लायक नहीं हैं, क्योंकि हमारे सामने विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें पूरी तरह से राज्य की नीतियों के मुद्दों से जुड़ी हैं, जिनसे न्यायालय को आमतौर पर कोई सरोकार नहीं है। इसके अलावा, हम पाते हैं कि जब इसी तरह के प्रयास पूर्व में, निश्चित रूप से दूसरों द्वारा किए गए थे, पहले के अवसरों पर इस न्यायालय ने माना था कि समाधान कहीं और है, न कि अदालतों के दरवाजे खटखटाने से।

4. महर्षि अवधेश बनाम भारत संघ के मामले में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका को खारिज करते हुए निम्नानुसार निर्धारित किया।

यह संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक पक्ष द्वारा व्यक्तिगत रूप से दायर याचिका है। प्रार्थनाएँ दोतरफा हैं। पहली प्रार्थना यह है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता बनाने के सवाल पर विचार करने के लिए उत्तरदाताओं को परमादेश जारी किया जाए। दूसरी प्रार्थना मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 को मनमाना और भेदभावपूर्ण होने और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15, मौलिक अधिकारों, अनुच्छेद-44, 38, 39 और 39-ए का उल्लंघन करने वाला घोषित करने की है। तीसरी प्रार्थना उत्तरदाताओं को यह निर्देश देना है कि वे मुस्लिम महिलाओं की गरिमा और अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले और उनकी सुरक्षा के खिलाफ शरीयत अधिनियम न बनाएं। ये सब विधायिका के मामले हैं। कोर्ट इन मामलों में कानून नहीं बना सकता। रिट याचिका खारिज की जाती है।

5. रेनॉल्ड राजमणि और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1982¼2½ एससीसी 474 के मामले में इस न्यायालय ने भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 की धारा 7 और 10 के दायरे के संदर्भ में निम्नानुसार निर्णय दिया:-

4. इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि समाज आम तौर पर सामाजिक स्थिरता, पारिवारिक घर और विवाह के बच्चों की उचित वृद्धि और खुशी की रक्षा के उद्देश्य से विवाह बंधन को बनाए रखने और वैवाहिक राज्य को संरक्षित करने में रुचि रखता है। विवाह को विघटित करने के उद्देश्य से बनाया गया कानून उस प्राथमिक सिद्धांत से विचलन है, और विधायिका उन आधारों को निर्धारित करने में बेहद सतर्क है जिन पर विवाह विघटित किया जा सकता है। सभी वैवाहिक कानूनों

का इतिहास दिखाएगा कि शुरुआत में रूढ़िवादी दृष्टिकोण ने उन आधारों को प्रभावित किया जिन पर अलगाव या तलाक दिया जा सकता था। दशकों से, एक अधिक उदार रवैया अपनाया गया है, जो सीधे तौर पर शामिल वयस्क पक्षों की व्यक्तिगत खुशी की आवश्यकता की मान्यता से प्रेरित है। हालाँकि, तलाक के आधारों को उदार बना दिया गया है, फिर भी वे वैवाहिक बंधन को जारी रखने के पक्ष में सामान्य सिद्धांत का अपवाद बने हुए हैं। हमारी राय में, जब कोई विधायी प्रावधान उन आधारों को निर्दिष्ट करता है जिन पर तलाक दिया जा सकता है तो वे एकमात्र शर्त बनते हैं जिस पर अदालत के पास तलाक देने का अधिकार क्षेत्र होता है। यदि कानून में पहले से ही विशेष रूप से निर्धारित आधारों को जोड़ने की आवश्यकता है, तो यह विधायिका का काम है, न कि अदालतों का। यह दूसरी बात है कि जिस भाषा में आधारों को शामिल किया गया है, उसकी व्याख्या करते समय अदालतों को इसे एक उदार संरचना देनी चाहिए। दरअसल, हमारा मानना है कि अदालतों को ऐसे प्रावधान को अर्थ का पूर्ण आयाम देना चाहिए। लेकिन यह एक ऐसा अर्थ होना चाहिए जिसे धारा की भाषा धारण करने में सक्षम हो। इसे धारा में उल्लिखित नए आधारों को जोड़कर नहीं बढ़ाया जा सकता है।

6. मिस थॉमस ने हमसे सोशल इंजीनियरिंग की नीति अपनाने और धारा 7 को वह सामग्री देने की अपील की जो विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 26 और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी दोनों में अधिनियमित की गई है। जिनमें आपसी सहमति से तलाक का प्रावधान है। यह कहना संभव है कि हिंदू विवाह और विशेष विवाह अधिनियम द्वारा शासित विवाह से संबंधित कानून भारतीय तलाक अधिनियम की तुलना में इस क्षेत्र में विकास का एक अधिक उन्नत चरण प्रस्तुत करता है। हालाँकि, आपसी सहमति से तलाक का प्रावधान भारतीय तलाक अधिनियम में शामिल किया जाना चाहिए या नहीं यह विधायी नीति का मामला है। अदालतें



कानून में कोई प्रावधान जोड़कर विधायी नीति का विस्तार या विस्तार नहीं कर सकती हैं जो वहां कभी अधिनियमित नहीं किया गया था।

6. पन्नालाल बंसीलाल और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश और अन्य राज्य : [1996]2SCC498 के मामले में धारा 15, 16, 17, 29(5) और 144 आंध्रप्रदेश चैरिटेबल हिंदू धर्म और बंदोबस्ती अधिनियम, 1987 को चुनौती दी गई थी। अन्य बातों के साथ-साथ इस न्यायालय ने निर्धारित किया:-

"पहला सवाल यह है कि क्या यह आवश्यक है कि विधायिका को सभी धर्मों या धर्मार्थ या सार्वजनिक संस्थानों और सभी धर्मों को मानने वाले लोगों द्वारा स्थापित या संचालित बंदोबस्ती पर समान रूप से लागू होने वाला कानून बनाना चाहिए। भारत जैसे बहुलवादी समाज में, जहां लोग अपने-अपने धर्मों, विश्वासों या विभिन्न धर्मों या उनकी शाखाओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में आस्था रखते हैं, संविधान बनाते समय संविधान निर्माताओं को विभिन्न धर्मों को मानने वाले भारत के लोगों को एकजुट करने और एकीकृत करने की समस्याओं का सामना करना पड़ा। समाज में अलग-अलग जातियों, लिंग या उप-वर्गों में पैदा हुए विश्वासों ने अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाएं और बोलियां बोलीं और समाज के सभी वर्गों को एक अखंड भारत के रूप में एकीकृत करने के लिए एक धर्मनिरपेक्ष संविधान प्रदान किया। संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांत स्वयं विविधता की कल्पना करते हैं और विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच एकरूपता को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं। हालाँकि, एक समान कानून वांछनीय हो सकता है, लेकिन इसे एक बार में लागू करना शायद राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए प्रतिकूल हो सकता है।

कानून के शासन द्वारा शासित लोकतंत्र में धीरे-धीरे प्रगतिशील परिवर्तन और व्यवस्था लायी जानी चाहिए। कानून बनाना या कानून में संशोधन करना एक धीमी प्रक्रिया है और विधायिका वहां समाधान करने का प्रयास करती है जहां इसकी सबसे अधिक आवश्यकता महसूस की जाती है। इसलिए, यह सोचना अनुचित और गलत होगा कि सभी कानूनों को एक ही बार में सभी लोगों पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए। जो शरारत या दोष सबसे गंभीर है, उसे चरणबद्ध तरीके से कानून की प्रक्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है।

7. बॉम्बे राज्य बनाम नरसु अप्पा माली AIR 1952 Bom84, चागला, सीजे द्वारा बॉम्बे हिंदू द्विविवाह विवाह रोकथाम अधिनियम, 1946 की वैधता पर विचार करते हुए, यह निर्धारित किया गया:-

"एक प्रश्न उठाया गया है कि क्या यह विधानमंडल का काम है कि वह निर्णय ले कि सामाजिक सुधार क्या है। यह नहीं भूलना चाहिए कि लोकतंत्र में विधायिका का गठन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। वे राज्य के कल्याण के लिए जिम्मेदार हैं और उन्हें ही वह नीति निर्धारित करनी है जिसका राज्य को अनुसरण करना चाहिए। इसलिए, यह उन्हें तय करना है कि राज्य के कल्याण को आगे बढ़ाने के लिए कानून की किताब में कौन सा कानून डाला जाए

आगे यह निर्धारित किया गया कि:-

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि मुसलमानों को इस अधिनियम के कार्यान्वयन से बाहर रखा गया है। यहां तक कि दंड संहिता की धारा 494, जो द्विविवाह को अपराध बनाती है, पारसियों, ईसाइयों और

अन्य लोगों पर लागू होती है, लेकिन मुसलमानों पर नहीं क्योंकि बहुविवाह को एक वैध संस्था के रूप में मान्यता दी जाती है जब एक मुस्लिम पुरुष एक से अधिक पत्नियों से शादी करता है। हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या मुसलमानों को एक अलग वर्ग के रूप में बनाने का कोई उचित आधार है जिस पर बहुविवाह पर रोक लगाने वाले कानून लागू नहीं होने चाहिए। अब, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि इस देश में मुसलमानों और हिंदुओं दोनों के अपने-अपने निजी कानून हैं जो उनके संबंधित धार्मिक ग्रंथों पर आधारित हैं और जो उनके अपने विशिष्ट विकास का प्रतीक हैं और जो उनकी अपनी विशिष्ट पृष्ठभूमि से रंगे हुए हैं। अनुच्छेद 44 स्वयं अलग और विशिष्ट व्यक्तिगत कानूनों को मान्यता देता है क्योंकि यह एक निर्देश के रूप में प्राप्त किया जाता है कि एक मापने योग्य समय के भीतर भारत को जाति या धर्म की परवाह किए बिना अपने सभी नागरिकों पर लागू एक समान नागरिक संहिता के विशेषाधिकार का आनंद लेना चाहिए। इसलिए, हिंदू द्विविवाह विवाह अधिनियम द्वारा विधानमंडल ने जो करने का प्रयास किया है, वह एक विशेष समुदाय के अपने निजी कानून के संबंध में सामाजिक सुधार पेश करना है। विवाह की संस्था को हिंदू और मुसलमानों द्वारा अलग-अलग तरीके से देखा जाता है। जबकि पहले के लिए यह एक संस्कार है , दूसरे के लिए यह अनुबंध का मामला है। यही कारण है कि विवाह विच्छेद के प्रश्न को दोनों धर्मों द्वारा अलग-अलग ढंग से निपटाया जाता है । जबकि मुस्लिम कानून आसान तलाक को स्वीकार करता है, हिंदू विवाह को अविभाज्य माना जाता है और हाल

ही में राज्य ने हिंदुओं के बीच तलाक की अनुमति देने वाला कानून पारित किया है। राज्य दोनों समुदायों के शैक्षिक विकास पर विचार करने का भी हकदार था। एक समुदाय सामाजिक सुधार को स्वीकार करने और कार्य करने के लिए तैयार हो सकता है; हो सकता है कि दूसरा अभी इसके लिए तैयार न हो; और लेख. 14 यह नहीं कहता कि राज्य जिस भी कानून को अपना सकता है, वह आवश्यक रूप से सभी को गले लगाने वाला होना चाहिए। राज्य चरणों में सामाजिक सुधार लाने का उचित निर्णय ले सकता है और चरण क्षेत्रीय हो सकते हैं या वे समुदायवार हो सकते हैं। इन विचारों से यह पता चलता है कि यदि हिंदू द्विविवाह विवाह अधिनियम की प्रयोज्यता में हिंदू के खिलाफ कोई भेदभाव है, तो वह भेदभाव केवल धर्म के आधार पर नहीं है। समान रूप से, यदि द्विविवाह के संबंध में कानून एक समान नहीं है, तो अंतर और भेदभाव मनमाना या सनकी नहीं है, बल्कि उचित आधार पर आधारित है"।

गर्जेन्द्रगडकर जे. ने अपनी समवर्ती लेकिन अलग राय में निम्नलिखित रूप से एक ही विचार व्यक्त किया:

"अगला सवाल यह है कि क्या यह अधिनियम इस राज्य के ईसाई और पारसी नागरिकों के संदर्भ में हिंदुओं के खिलाफ भेदभाव करता है , जहां तक कि यह केवल हिंदुओं को सजा और प्रक्रिया के रूप में विशेष रूप से गंभीर प्रावधानों के अधीन करता है। यह सच है कि जहां सामान्य आपराधिक कानून के तहत द्विविवाह का अपराध केवल पत्नी की शिकायत पर संज्ञेय है, वहीं लागू अधिनियम इसे संज्ञेय बनाता है ताकि पत्नी की शिकायत, अपराधी पति के खिलाफ

कार्यवाही शुरू करने के लिए अनावश्यक हो। द्विविवाह का अपराध सामान्य आपराधिक कानून के तहत समझौता योग्य है; लेकिन आक्षेपित अधिनियम के तहत नहीं; और विवादित अधिनियम के तहत "दुष्प्रेरक" शब्द भी भारतीय दंड संहिता की तुलना में व्यापक है। वास्तव में इन प्रावधानों पर हिंदुओं के खिलाफ भेदभाव का आरोप लगाया गया है। हालाँकि, इस प्रश्न से निपटने में, यह याद रखना चाहिए कि विधानमंडल ने सोचा होगा कि हिंदुओं के बीच प्रचलित द्विविवाह की बुराई को तब तक प्रभावी ढंग से कम नहीं किया जा सकता जब तक कि अपराध को संज्ञेय न बनाया जाए और जब तक कि उकसाने वालों में पुजारी भी शामिल न हों। हिंदू विवाह में भाग लेना, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, हिंदू विवाह हिंदू पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम और समर्पण है, यह सर्वविदित है। विधायिका ने अच्छी तरह से सोचा होगा कि पत्नी के कहने पर हिंदू द्विविवाह के अपराध को दंडनीय बनाना व्यर्थ होगा क्योंकि हिंदू पत्नियां किसी भी शिकायत के साथ आगे नहीं आ सकती हैं। ईसाइयों और पारसियों के बीच, एक विवाह प्रथा कई वर्षों से चली आ रही है और उनके बीच विवाह एक अनुबंध का विषय है। उनमें तलाक की अनुमति है, जबकि हिंदुओं में इतने वर्षों तक इसकी अनुमति नहीं थी। यदि विधानमंडल इन विचारों पर कार्य करते हुए हिंदुओं के बीच द्विविवाह विवाहों से निपटने के लिए एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करना चाहता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि विधानमंडल केवल धर्म के आधार पर हिंदुओं के खिलाफ भेदभाव कर रहा था। यह विधायिका का काम था कि वह यह तय करने से पहले हिंदुओं के सामाजिक रीति-रिवाजों और

मान्यताओं और अन्य प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखे कि क्या उनके बीच द्विविवाह विवाह से निपटने के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करना आवश्यक है। यह स्पष्ट रूप से विधायिका का क्षेत्र है और न्यायालयों को उनके विचारों या उनके ज्ञान के औचित्य से कोई सरोकार नहीं है। इसलिए, मेरा मानना है कि इस तर्क में कोई दम नहीं है कि दंडात्मक प्रावधान हैं एक आक्षेपित अधिनियम केवल धर्म के आधार पर हिंदुओं के खिलाफ भेदभाव का गठन करता है।

एक और मुद्दा है जिससे मैं निपटना चाहूंगा। हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया है कि विवादित अधिनियम को बॉम्बे राज्य के मुस्लिम नागरिकों पर लागू किया जाना चाहिए था। ऐसा कहा जाता है कि यदि विवादित अधिनियम सामाजिक सुधार का एक उपाय है, तो कोई कारण नहीं है कि राज्य विधानमंडल को मुस्लिम समुदाय को इस सामाजिक सुधार का लाभ नहीं देना चाहिए था। भारत संघ एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है और राज्य विधानमंडल धार्मिक मतभेदों के आधार पर अपने नागरिकों के बीच भेदभाव करने और केवल हिंदुओं पर लागू अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने में गलत था। यह तर्क कुछ हद तक राजनीतिक है और इस नाते हमारा इससे कोई सरोकार नहीं है। लेकिन तर्क का एक हिस्सा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों पर आधारित है और तर्क के इस पहलू से निपटना आवश्यक है"।

विद्वान न्यायाधीश ने आगे इस प्रकार कहा:-

"लेकिन यह तर्क दिया जाता है कि इस सामाजिक सुधार के संबंध में भी, राज्य विधानमंडल को इसे सर्वव्यापी बनाना चाहिए था और मुसलमानों को इसके दायरे से बाहर नहीं छोड़ना चाहिए था। यह, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, आंशिक रूप से एक राजनीतिक और आंशिक रूप से एक कानूनी तर्क है, क्या इस अधिनियम को मुसलमानों के साथ-साथ हिंदुओं पर भी लागू करना समीचीन था, यह विधानमंडल के विचार का विषय होगा। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि कानून के समक्ष समानता, जिसकी गारंटी अनुच्छेद 14 द्वारा दी गई है, विवादित अधिनियम द्वारा अपमानित नहीं होती है यदि अधिनियम जो वर्गीकरण करता है वह उचित और तर्कसंगत विचारों पर आधारित है। राज्य विधानमंडल के लिए हमेशा और हर मामले में एक कदम उठाकर सामाजिक कल्याण और सुधार प्रदान करना अनिवार्य नहीं है। जब तक राज्य विधानमंडल सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए क्रमिक कदम उठाते हुए ऐसे भेदभाव या वर्गीकरण नहीं पेश करता है जो अनुचित, अतार्किक या दमनकारी हों, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन होता है। राज्य विधायिका ने सोचा होगा कि हिंदू समुदाय प्रश्न में सुधार के लिए अधिक परिपक्व था। पिछले कई वर्षों से हिंदुओं के समाज सुधारकों ने इस सुधार के लिए जोरदार आंदोलन किया है और विधायिका के अनुसार, हिंदुओं की सामाजिक चेतना, प्रस्तावित सुधार की भावना के साथ अधिक सुसंगत रही होगी। इसके अलावा, मुसलमानों के बीच तलाक हमेशा स्वीकार्य रहा है और उनके बीच विवाह अनुबंध का विषय है। यदि राज्य विधानमंडल ने इस तरह

के विचारों पर कार्य करते हुए इस सुधार को सबसे पहले हिंदुओं के बीच लागू करने का निर्णय लिया, तो मेरी राय में यह मानना असंभव होगा कि अधिनियम द्वारा परिभाषित हिंदुओं तक ही लागू अधिनियम को सीमित करके, इसने पहले की समानता का उल्लंघन किया है। अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत कानून । इसलिए, मेरी राय में, यह तर्क कि विवादित अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया गया है, विफल होना चाहिए।

गजेंद्रगडकर न्यायाधीश ने इस सवाल पर भी अपनी राय व्यक्त की कि क्या संविधान का भाग III व्यक्तिगत कानूनों पर लागू होता है। विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"भारत का संविधान स्वयं इन व्यक्तिगत कानूनों के अस्तित्व को मान्यता देता है जब यह समवर्ती सूची-सूची III में आइटम 5 में व्यक्तिगत कानून के अंतर्गत आने वाले विषय से संबंधित है। यह आइटम विवाह और तलाक के विषयों से संबंधित है ; शिशु और नाबालिग; गोद लेना: वसीयत, निर्वसीयत और उत्तराधिकार; संयुक्त परिवार और विभाजन; सभी मामले जिनके संबंध में न्यायिक कार्यवाही में पक्ष इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले उनके व्यक्तिगत कानून के अधीन थे। इस प्रकार राज्य या संघ विधानमंडल पर्सनल लॉ के दायरे में आने वाले विषयों पर कानून बनाने के लिए सक्षम है और फिर भी अनुच्छेद में "पर्सनल लॉ" अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं किया गया है। 13 , क्योंकि, मेरी राय में, संविधान निर्माता पर्सनल लॉ को संविधान के भाग III के दायरे से बाहर छोड़ना चाहते थे। वे जानते होंगे कि इन व्यक्तिगत कानूनों में कई भौतिक



विवरणों में सुधार की आवश्यकता है और वास्तव में वे इन विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों को समाप्त करना चाहते थे और एक सामान्य कोड विकसित करना चाहते थे। फिर भी वे नहीं चाहते थे कि संविधान के भाग III में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के कारण व्यक्तिगत कानूनों के प्रावधानों को चुनौती दी जाए और इसलिए उनका इन व्यक्तिगत कानूनों को "प्रवृत्त कानूनों" की परिभाषा में शामिल करने का इरादा नहीं था । " इसलिए, मैं विद्वान मुख्य न्यायाधीश की इस बात से सहमत हूँ कि व्यक्तिगत कानून अनुच्छेद 13(जे) के अंतर्गत बिल्कुल भी नहीं आते हैं।"

कृष्णा सिंह बनाम मथुरा अहीर और अन्य में एआइआर 1980 एससी 707 यह न्यायालय इस सवाल पर विचार कर रहा था कि क्या एक शूद्र को धार्मिक आदेश के लिए नियुक्त किया जा सकता है और वह संन्यासी या यति बन सकता है और इसलिए, संत मत सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार गरवाघाट मठ के महंत के रूप में स्थापित किया जा सकता है, यह अभिनिर्धारित किया गया:-

"प्रारंभ में, उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार से निपटना सुविधाजनक होगा कि स्मृति लेखकों द्वारा दिए गए सख्त नियम जिसके परिणामस्वरूप शूद्रों को यति या संन्यासी के आदेश में प्रवेश करने में असमर्थ माना जाता था, संविधान के भाग III के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के कारण वैध होना समाप्त हो गया है। हमारी राय में, विद्वान न्यायाधीश इस बात को समझने में विफल रहे कि संविधान का भाग III पार्टियों के व्यक्तिगत कानूनों को नहीं छूता है। पार्टियों के व्यक्तिगत कानूनों को लागू करने में, वह हिंदू कानून के मान्यता प्राप्त और आधिकारिक स्रोतों से प्राप्त कानून की अपनी

अवधारणाओं को पेश नहीं कर सका, यानी स्मृतियों और टिप्पणियों का उल्लेख किया गया, जैसा कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के फैसले में व्याख्या की गई है, सिवाय इसके कि ऐसा कहा है कानून किसी भी उपयोग या प्रथा द्वारा बदला जाता है या कानून द्वारा संशोधित या निरस्त किया जाता है"।

सरला मुद्गल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1995(3) एससीसी 635

इस न्यायालय ने कहा:

"अनुच्छेद 33 इस अवधारणा पर आधारित है कि सभ्य समाज में धर्म और व्यक्तिगत कानून के बीच कोई आवश्यक संबंध नहीं है। अनुच्छेद 25 धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है जबकि अनुच्छेद 44 धर्म को सामाजिक संबंधों और व्यक्तिगत कानून से अलग करने का प्रयास करता है। विवाह , उत्तराधिकार और धर्मनिरपेक्ष चरित्र के ऐसे मामलों को अनुच्छेद 25 26 और 27 के तहत निहित गारंटी के भीतर नहीं लाया जा सकता है । हिंदुओं के व्यक्तिगत कानून, जैसे कि विवाह , उत्तराधिकार और इसी तरह से संबंधित सभी का मूल मूल धार्मिक है, उसी तरह जैसे मुसलमानों या ईसाइयों के मामले में होता है। सिखों, बौद्धों और जैनियों के साथ-साथ हिंदुओं ने राष्ट्रीय एकता और एकीकरण के लिए अपनी भावनाओं को त्याग दिया है, कुछ अन्य समुदाय ऐसा नहीं करेंगे, हालांकि संविधान पूरे भारत के लिए एक "सामान्य नागरिक संहिता" की स्थापना का आदेश देता है"।

हालाँकि, ऊपर उल्लिखित किसी भी निर्णय को डिवीजन बेंच के समक्ष नहीं रखा गया क्योंकि उन्हें कुलदीप सिंह, जे. और आरएम सहाय, जे. के

अलग-अलग निर्णयों में कोई उल्लेख नहीं मिला। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस बात पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था कि क्या भाग III भारत के संविधान व्यक्तिगत कानूनों पर लागू होता है या नहीं। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि हम इस बात से संतुष्ट हैं कि हमारे सामने जो तर्क दिए गए हैं, जैसा कि शुरुआत में बताया गया है, हमारी राय में, विधायिका द्वारा निपटाए जाने वाले योग्य हैं।

हम यह भी बता सकते हैं कि उस मामले में समान नागरिक संहिता लागू करने की वांछनीयता से संबंधित प्रश्न सीधे तौर पर नहीं उठता था। कुलदीप सिंह, जे. ने अपने फैसले में निर्णय के लिए जो प्रश्न तैयार किये थे वे ये थे:

"क्या कोई हिंदू पति, जो हिंदू कानून के तहत इस्लाम अपनाकर शादी करता है, दूसरी शादी कर सकता है? क्या कानून के तहत पहली शादी को खत्म किए बिना ऐसा विवाह, पहली पत्नी के हिंदू बने रहने के लिए वैध विवाह होगा? क्या धर्मत्यागी पति भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 494 के तहत अपराध का दोषी होगा"

सहाय, जे. ने अपने अलग लेकिन सहमत निर्णय में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता का उल्लेख किया और कहा:

"समान संहिता की वांछनीयता पर शायद ही संदेह किया जा सकता है। लेकिन यह तभी मूर्त रूप ले सकता है जब समाज के अभिजात वर्ग द्वारा सामाजिक माहौल का समुचित निर्माण किया जाए; नेताओं के बीच राजनेता जो व्यक्तिगत लाभ हासिल करने के बजाय ऊपर उठते हैं और परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए जनता को जागृत करते हैं।"

सहाय, जे. की राय थी कि हालांकि समान नागरिक संहिता का होना वांछनीय है, लेकिन अभी समय नहीं आया है और इस मुद्दे को विधि आयोग को सौंपा जाना चाहिए जो अल्पसंख्यक आयोग के परामर्श से इसकी जांच कर सकता है। इसीलिए जब न्यायालय ने दोनों विद्वान न्यायाधीशों द्वारा हस्ताक्षरित अंतिम आदेश तैयार किया तो उसने कहा, "कुलदीप सिंह, जे की राय में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के संदर्भ में रिट याचिकाओं को अनुमति दी जाती है।" ये प्रश्न हम पहले ही उठा चुके हैं और निर्णय उन पर पहुंचे निष्कर्षों तक ही सीमित था, जबकि समान नागरिक संहिता लागू करने की वांछनीयता पर टिप्पणियाँ संयोगवश की गई थीं।

मधु किश्वर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य। 1996<sup>1</sup>/<sub>4</sub>5<sup>1</sup>/<sub>2</sub> एससीसी 125 इस न्यायालय ने छोटानागपुर किरायेदारी अधिनियम, 1908 के कुछ प्रावधानों को दी गई चुनौती पर विचार करते हुए निम्नानुसार कहा:

"इस विषय पर कुछ विधानों का उल्लेख करना उचित होगा। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन आदि अधिकांश भारतीयों पर लागू होने वाले उत्तराधिकार के नियमों को नियंत्रित और निर्धारित करता है, जिसके तहत 1956 से, यदि पहले नहीं तो, महिला उत्तराधिकारी को पुरुष उत्तराधिकारी के बराबर रखा जाता है। संख्याओं की पंक्ति में अगला शरीयत कानून है, जो मुसलमानों पर लागू होता है, जिसके तहत महिला उत्तराधिकारी को विरासत में असमान हिस्सा मिलता है, जो कि पुरुष को मिलता है, उसका आधा हिस्सा होता है। इसके बाद भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम आता है जो ईसाइयों पर लागू होता है और कुल मिलाकर उपरोक्त दो कानूनों के अंतर्गत नहीं आने वाले लोगों पर लागू होता है, जो एक निश्चित तरीके से महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों को भी उत्तराधिकार प्रदान

करता है। इसके कुछ अध्याय कुछ समुदायों पर लागू नहीं होते हैं। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (2) महत्वपूर्ण रूप से यह प्रावधान करती है कि अधिनियम में शामिल कुछ भी संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के भीतर किसी भी अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लागू नहीं होगा , जब तक कि आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्र सरकार द्वारा अन्यथा निर्देशित न किया जाए। धारा 3(2) आगे यह प्रावधान करती है कि अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा आवश्यक न हो , पुल्लिंग को आयात करने वाले शब्दों को महिलाओं को शामिल करने के लिए नहीं लिया जाएगा। विधायी अभ्यास का सामान्य नियम यह है कि जब तक विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो, कानून में प्रयुक्त पुल्लिंग शब्दों को महिलाओं को शामिल करने के लिए लिया जाना चाहिए। सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 13 की ओर ध्यान आकर्षित करें । लेकिन उत्तराधिकार के मामलों में बहुलता के सामान्य नियम को सावधानी से लागू करना होगा। इस प्रकार उपरोक्त प्रावधान पूर्व प्रचुर मात्रा में सम्मिलित किया गया प्रतीत होता है। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 3 के तहत भी , राज्य सरकार को किसी भी जाति, संप्रदाय या जनजाति को अधिनियम के संचालन से छूट देने का अधिकार है और बिहार राज्य में मुंडा, ओरांव, संधाल आदि जनजातियों को छूट दी गई है जिनके प्रति हमारा सरोकार था। इस प्रकार न तो हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, न ही भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, और न ही शरीयत कानून रीति -रिवाज से शासित आदिवासियों पर लागू होता है। और

रीति-रिवाज , जैसा कि सर्वविदित है, लोगों-दर-लोगों और क्षेत्र-दर-क्षेत्र भिन्न-भिन्न होता है"।

"संवेदनशील जनजातीय लोगों द्वारा अपने स्वयं के रीति-रिवाजों , परंपराओं और प्रथाओं को महत्व देते हुए, इन विभाजनों और दृश्यमान अवरोधों के तथ्य में, न्यायिक रूप से उन पर दूसरों के लिए लागू व्यक्तिगत कानूनों के सिद्धांतों को लागू करना, एक अभिजात्य दृष्टिकोण पर या समानता सिद्धांत पर, न्यायिक द्वारा सक्रियता, एक कठिन और दिमाग चकरा देने वाला प्रयास है। ऐसा लगता है कि भाई के. रामास्वामी, जे. ने यह विचार किया है कि भारतीय विधानमंडल (और सरकारें भी) राजनीतिक कारणों से और इस स्थिति में, इस दिशा में सक्रिय होने के लिए खुद को प्रेरित नहीं करेंगी। एक सक्रिय अदालत, जैसा कि घोषित रूप से राजनीतिक है, कार्रवाई में आ सकती है और याचिकाकर्ताओं द्वारा अपने लिखित प्रस्तुतीकरण में सुझाए गए अनुसार व्यापक रूप से कानून बना सकती है, किन्तु परिणाम कितना भी प्रशंसनीय, वांछनीय और आकर्षक क्यों न लगे, हमारे विद्वानों भाइयों ने इसे खुशी से देखा है कि एक एक्टिविस्ट कोर्ट विधायी विषय के विवरण और पेचीदगियों से निपटने के लिए पूरी तरह से सुसज्जित नहीं है और अधिक से अधिक सलाह दे सकती है और समस्या पर राज्य की राजनीति पर ध्यान केंद्रित कर सकती है और उसे उसकी नींद से झकझोर सकती है, उसे जागने , मार्च करने और लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रेरित कर सकती है। क्योंकि, न्यायालय की चिंता चाहे जो भी हो, उसे अनिवार्य रूप से, कहीं न कहीं और कभी-कभी, अपनी आत्म-गति पर ब्रेक लगाने की

आवश्यकता होती है, जिसे न्यायिक भाषा में आत्म-संयम के रूप में वर्णित किया जाता है। इसलिए हम भाई के. रामास्वामी, जे. से सहमत हैं जैसा कि उन्होंने पृष्ठ 36 पर समाप्त होने वाले पैराग्राफ में संक्षेप में बताया है। अपने फैसले के पृष्ठ 36 (पैरा 46) में कहा कि इन परिस्थितियों में आदिवासी निवासियों के रीति-रिवाजों को संविधान के अनुच्छेद 14 15 और 21 का उल्लंघन करने वाला घोषित करना वांछनीय नहीं है और जब पूरे तथ्य अदालत के सामने रखे जाएं तो प्रत्येक मामले की जांच की जानी चाहिए।

अधिनियम के वैधानिक प्रावधानों के संबंध में, उन्होंने उनकी संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए धारा 7 और 8 को पढ़ने का प्रस्ताव दिया है। यह दृष्टिकोण पृष्ठ 36 (पैरा 47, 48)से उनके निर्णय में उपलब्ध है। शब्द "पुरुष वंशज जहां कहीं भी आते हैं, उनमें "महिला वंशज" शामिल होंगे। यह भी प्रस्तावित है कि भले ही हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 और भारत उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रावधान अनुसूचित जनजातियों पर लागू नहीं होंगे, फिर भी सामान्यतः न्याय, समानता और निष्पक्ष खेल के सिद्धांत उन पर लागू होंगे। इस आधार पर यह विचार करने का प्रस्ताव किया गया है कि अनुसूचित जनजाति की महिलाएं बिना वसीयत के उत्तराधिकार के रूप में पैतृक माता-पिता, भाई या पति की संपत्ति में सफल होंगी और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के सिद्धांतों के अनुसार पूर्ण अधिकारों के साथ पुरुष उत्तराधिकारी के साथ समान शेयरों में संपत्ति उत्तराधिकार प्राप्त करेंगी। हालाँकि, हम इस कानून को बहुत पसंद कर सकते हैं इसलिए हमें इसे प्राप्त करने

के उद्देश्य के साधनों की सदस्यता लेने में असमर्थता पर खेद है। यदि यह अदालत के जंगल में प्रवेश करने पर वापसी का मार्ग है, तो यह विभिन्न स्थितियों में समान दावों के लिए एक रास्ता अपनाएगा, आदिवासी परिभाषाओं पर नहीं रुकेगा, और कानून की अन्य प्रणालियों को अधिनियम और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम मॉडल के रूप में हिंदू उत्तराधिकार के अनुरूप लाने के लिए एक गगनभेदी हंगामा होगा। उत्तराधिकार के नियम वास्तव में विभेदक उपचार प्रदान करने के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं, जरूरी नहीं कि समान हों। सभी घटनाओं में गैर-एकरूपता अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करेगी। उपलब्ध कानून के अलावा प्रावधानों में न्यायाधीश द्वारा किए गए संशोधनों से आम तौर पर बचा जाना चाहिए। इस प्रकार हम इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए बाध्य हैं, भले ही यह सतर्क दृष्टिकोण अपनाने के लिए रूढ़िवादी प्रतीत हो, और हमारे विद्वान भाई द्वारा प्रस्तावित दृष्टिकोण, अफसोस के साथ, हमें स्वीकार्य नहीं है।

वास्तव में भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 10 की संवैधानिकता को एक पीड़ित पति और इस न्यायालय ने अनिल कुमार महसी बनाम भारत संघ और अन्य (1994)5SCC704 मामले में चुनौती दी थी। इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि:- "महिला की मांसपेशियों की दृष्टि से कमजोर शरीर, उसकी सामान्य कमजोर शारीरिक और सामाजिक स्थिति और विशेष रूप से इस देश में उसकी रक्षात्मक और गैर-आक्रामक प्रकृति और भूमिका को ध्यान में रखते हुए, यदि पत्नी को उक्त दो आधार उपलब्ध कराए जाते हैं न कि पति को विवाह विच्छेद की मांग करने के लिए तो विधायिका



को शायद ही कोई दोष दिया जा सकता है। उन्हीं कारणों से, यह शायद ही कहा जा सकता है कि इस कारण से अधिनियम की धारा 10 के प्रावधान पति के खिलाफ भेदभावपूर्ण हैं।

इसलिए, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता-पति द्वारा धारा 10 के प्रावधानों को चुनौती क्योंकि यह पति के खिलाफ भेदभावपूर्ण है और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है देने में कोई सार नहीं है

जहां तक मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 को चुनौती का सवाल है, हम समझते हैं कि उक्त मुद्दा संविधान पीठ के समक्ष लंबित है। इसलिए, हमें इस संबंध में कार्यवाही बढ़ाने का कोई कारण नहीं दिखता।

परिणामस्वरूप और इस न्यायालय के पहले के फैसलों को ध्यान में रखते हुए, हम इन रिट याचिकाओं पर विचार करने से इनकार करते हैं। तदनुसार, ये रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

याचिका खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मनोज कुमार गोयल (आर.जे.एस) द्वारा किया गया।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।